Economics Times 7/12/15

No Religious Brief for Gender Discrimination

AP Aboobacker Musliar, chief of Kerala's All India Sunni Jamiayyathul Ulama, has said that the concept of gender equality was 'un-Islamic.' He has said that the fates of girls and women lie in the hands of men, and their main function is to procreate. He is wrong. Islamic theologians say there is nothing in the Koran that says this: indeed the holiest scripture of Islam specifically states that men and women were created from the same substance and are of the same essence. They have stressed that among the many qualities of the Prophet was his solicitude towards widows and orphaned girls.

This is not unique to Islam: most religions teach gender equality, peace and equanimity. However, again and again zealots inject sexism, gender violence, caste and other forms of discrimination into the discourse and practice of organised religion. Mary Magdalene is mentioned at least 12 times in the four Gospels, more than most of the apostles. She was with Jesus constantly and witnessed his crucifixion. That did not deter medieval theologians from terming her a 'loose woman.' Nothing in the Bible justifies burning women as 'witches,' but this was common in Europe during the Middle Ages. The Manusmriti, which postdate the Vedas and Upanishads, says during various stages in her life a woman is the property of her father, husband and son —with no agency or voice in the public realm.

If these ideas sound archaic today, it is because all religions are subject to reform when their practice veers towards discrimination and cruelty. In Bengal, Hindu reformers like Raja Rammohun Roy and Vidyasagar managed to rid society of its worst gender abuses in the 19th century. Regressive views such as Musliar's must be contested from within his own community, and defeated in mainstream discourse.

प्रेरणा • सौर लैंप ने गृहिणियों, नमक बनाने वालों और फूल चुनने वालों की जिंदगी में बरसों के अंधेरे को दूर किया

सूरज की रोशनी से आमदनी का उजाला

दैनिक भास्कर 7-12-15

इला भट्ट
मैगसेसे अवॉर्ड से सम्मानित समाजसेवी

दिन ढलते ही उनकी कमाई पर ब्रेक लग जाता। रात की फुर्सत बेचैनी में कटती, क्योंकि रात का लंबा वक्त आमदनी के काम नहीं आता। लालटेन जलाना उनके बूते से बाहर था।

फूलों के खेत में रात 3 बजे तक फूल चुने जाते हैं ताकि अलसुबह इन्हें शहरों तक पहुंचाया जा सके। सोलर लैंप सिर पर बांधा और दोनों हाथ फूल चुनने के लिए आजाद।

पेरिस में जलवायु परिवर्तन के विनाशक असर से निपटने के लिए दुनियाभर के राष्ट्राध्यक्ष कॉर्बन आधारित जीवन-व्यवस्था बदलने पर सहमत हों अथवा नहीं, लेकिन हमारी समझदार और चतुर गरीब बहनों ने तो अपने और सबके लाभ के लिए आगे की ओर कदम बढ़ा दिया है। उन्होंने तो कोयला-पेट्रोल आधारित ऊर्जा की जगह सौर ऊर्जा को दे दी है ताकि गरीबी के कुचक्र को कमजोर कर सकें।

शहरों के घने इलाकों में गरीब परिवार रहते हैं। उनके लिए ये सिर्फ आवास ही नहीं बल्कि कामकाज की जगह भी है। घर में न हवा, न पर्याप्त उजाला। दिन में तो बरामदे में उजाला होता है, जहां बैठकर वे काम करती हैं। हालांकि, दिन ढलते ही उनकी कमाई पर ब्रेक लग जाता है। रात की फुर्सत इन्हें राहत नहीं देती, बल्कि बेचैनी में कटती है, क्योंकि रात का लंबा वक्त आमदनी के काम नहीं आता। महंगी पड़ने के कारण लालटेन जलाना बूते से बाहर है। अब स्थिति बदली है। अहमदाबाद के श्रमिक इलाकों की चाल के छोटे घरों में 'उजाला' पहुंच गया है। ज्यूपीटर की चाल, कडिया की चाल में घर के छप्परनुमा खपरैल का एक हिस्सा थोड़ा खोल देते हैं, उस जगह गुम्मट के आकार का फाइबर-प्लास्टिक का सोलर स्ट्रक्चर बिठाया है। इसकी खिड़कियां खोली और बंद की जा सकती हैं। इनकी डिजाइन ऐसी है कि उससे प्राकृतिक सूर्य प्रकाश अंधेरे कमरे में पहुंचकर दो ट्यूबलाइट जितना उजाला दिन भर रहता है। फिर गर्मी में उचित वेंटीलेशन के कारण घर में ठंडक भी रहती है। रात में सौर ऊर्जा मिलती है। उजाले की लागत है 1500 रुपए। सेवा (सेल्फ एम्प्लाइड वुमन्स एसोसिएशन) बैंक इसके लिए ऋण देता है। पूर्वी अहमदाबाद के रामोल की रहने वाली लखीबहन की आंखों में इसका जिक्र होते चमक दौड़ जाती है और कहती हैं, 'मुझे ऐसा लगता है मानो मैंने मोतिया बिंद निकलवा लिया है।'

खेतिहर मजदूरों को कई बार देर रात तक अंधेरे में काम करना होता है। अहमदाबाद के पास के गांवों में फूलों के खेत में रात 3 बजे तक फूल चुने जाते हैं ताकि अलसुबह इन्हें शहरों तक पहुंचाया जा सके। एक हाथ में लालटेन लेकर दूसरे हाथ से फूल चुनकर पीठ पर लदे थैले में संग्रहित किया जाता है। सोलर लैंप ने इस काम को काफी आसान कर दिया है। लैंप को सिर पर बांधा जा सकता है, जिससे दोनों हाथों से फूल चुनने का विकल्प रहता है। इससे उतने

ही समय में उत्पादकता और कमाई में बढ़ी है। सोलर लैंप यानी (बोलचाल की भाषा में) 'उजासिया' जैसी वैकल्पिक तकनीक का बहनें सहर्ष स्वागत कर रही हैं। कैरोसिन की लालटेन से तो ये कहीं ज्यादा लाभकारी हैं। शाम को खाना पकाने के लिए जल्दी घर नहीं दौड़ना पड़ता। आराम से घर के सभी सदस्य इसके उजाले में बैठकर भोजन करते हैं। बिहार के अधिकांश गांवों में तो लालटेन का ही सहारा है और इसीलिए 'सेवा' का वहां का अनुभव तो और भी रोमांच पैदा करता है। वहां स्वयंसेवी बचत समूह की महिलाएं बैंक से ऋण लेकर सोलर लैंप खरीद रही हैं। गांवों में स्कूली बच्चों की पढ़ाई का स्तर सुधरा है। हैं। लगभग अंधेरे में रसोई बनाने से गृहणियों को राहत मिली है। देर रात तक घर पर कढ़ाई-बुनाई सहित आमदनी देने वाले काम करने की क्षमता बढ़ने से जीवनस्तर में सुधार हुआ है। पहले तीन-चार मोबाइल फोन चार्ज करवाने के लिए धक्के खाने पड़ते थे, वे बंद हो गए हैं। कालाबाजारी का कैरोसिन खरीदने की झंझट से भी मुक्ति मिल गई है।

हालांकि, गांव में बिजली की दस्तक के साथ ही सोलर शक्ति से दिलचस्पी घटने लगती है, क्योंकि बिजली सब्सिडी पर मिलती है, लेकिन सौर ऊर्जा को आंदोलन की शक्ल देनी होगी, क्योंकि यही भविष्य की ऊर्जा है। वह दिन आएगा हर छोटे-बड़े गांव में सोलर प्रकाश होगा। सूर्य शक्ति से उद्योग चलेंगे। एक कहानी 'अगरिया' यानी नमक श्रमिकों की भी है। देश आजाद हो गया पर इन्हें आजादी मिलनी बाकी है। उनके लिए सिर पर तपता सूरज और नीचे हड्डियां गलाने वाला खारा पानी है। गांव छोड़कर नमक पकाने वाली क्यारियों में जाकर आठ-आठ महीने तक रण क्षेत्र में रहना पड़ता है। खारा पानी खींचने के लिए डीजल पम्प लगाना होता है। डीजल इतना महंगा हो चुका है कि अंततः तैयार होने वाले नमक से कोई बचत नहीं होती। घाटा उठाना पड़ता है। गुजरात के सुरेंद्रनगर जिले के पुराने कूडा की भावनाबहन 17 वर्षों से नमक श्रमिक हैं। पांच साल पहले 'सेवा' के माध्यम उन्होंने सहकारी मंडली बनाई और डेढ़ साल पहले रणक्षेत्र में सोलर पम्प का आगमन हुआ। डीजल पम्प का प्रयोग सिर्फ रात तक सीमित किया।

भावनाबहन के मुताबिक, 'पहले हर दिन औसतन सात लीटर डीजल जल जाता था। सोलर पम्प की बदौलत अब डीजल की खपत दो लीटर रह गई है। हर महीने 150 लीटर की बचत। सीजन के अंत में बचत 65,000 रुपए पहुंच गई। हमारी मंडली आर्थिक रूप से मजबूत हुई।' सूरज तो इनके लिए सोने की खान के समान हो गया है। 'सेवा' कश्मीर की बहनों ने सूर्य बत्ती (सौर लाइट) को सबसे महत्वपूर्ण जरूरत माना है। वे अलग-अलग समूहों में यहां आईं। सूर्य बत्ती को बनाना व मरम्मत करना सीखा। सूर्य बत्तियां दो-दो किश्त में खरीदीं और घर ले जाकर प्रयोग शुरू किया। उनके गांव में विद्युत आपूर्ति अनियमित होने की वजह से शीतऋतु कष्ट में बीतती रही है। सूर्य बत्ती से तार का कनेक्शन जोड़कर वे घर के दूसरे हिस्सों में भी उजियारे का प्रबंध करना सीख गई हैं। जिस मस्जिद में दो साल से लाइट बंद थी उसे भी सूर्य बत्ती से जगमग किया। मौलवी साहब महिलाओं के इस प्रयास से बहुत खुश हुए। वे अहमदाबाद से जाने वाली सेवा टीम की हमेशा खैर-खबर लेते हैं। वहां 22 गांव सूर्य बत्ती से उजियारी की सौगात पा रहे हैं।

'जलवायु परिवर्तन' की समस्या पर पेरिस में हो रही कॉन्फ्रेंस में भारत की महत्वपूर्ण भूमिका है। अच्छी बात है कि बड़े -बड़े वैज्ञानिक एवं राजनीतिज्ञों के हाथों से ये विश्व समस्या अब विकासपरक बन रही है। जलवायु परिवर्तन को टिकाऊ विकास के साथ जोड़ना उचित है, क्योंकि ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। विश्वास है कि ऐसा ही दृष्टिकोण कायम रहेगा। हमने सौर ऊर्जा एवं वनीकरण को दो प्रमुख मुद्दे माना है। यह स्वागत योग्य है। इसे जितनी जल्दी स्वीकारा जाए उतना अच्छा होगा अन्यथा दूसरे देश ऊर्जा को न्यूक्लियर ऊर्जा की ओर खींच ले जाने में देर नहीं करेंगे।

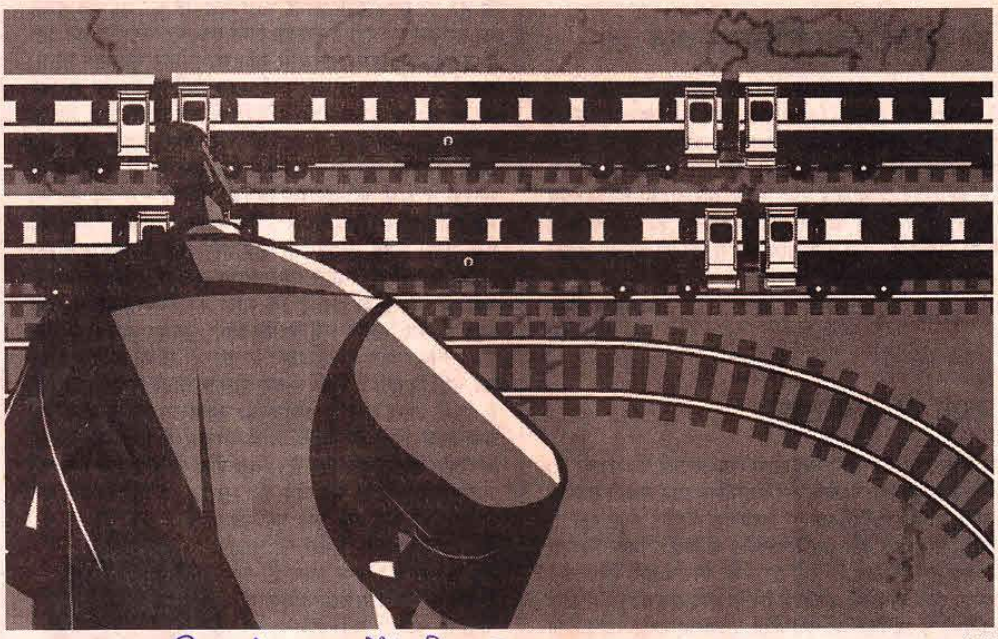

अजय मोहंती

बिज़नेस स्टैंडर्ड 7-12-15

नई नजीर से ही बदलेगी रेलवे की बिगड़ी तकदीर

भारतीय रेलवे में कई किस्से महज किंवदंतियों में ही दम तोड़ देते हैं। सही रूपरेखा के साथ उन्हें व्यावहारिक बनाकर हकीकत का रूप दिया जा सकता है। बता रहे हैं विवेक देवरॉय

भारत के मानचित्र पर गौर करते हुए हावड़ा से मुंबई जाने वाली रेलगाड़ी के मार्ग की कल्पना कीजिए। हावड़ा से मुंबई जाने के लिए पहले आपको इलाहाबाद आना पड़ सकता है, फिर मुंबई की राह मिलेगी। यह 2,127 किलोमीटर लंबी हावड़ा-इलाहाबाद-मुंबई रेल लाइन है, जो 1970 से परिचालन में है। मुंबई जाने वाला कोई भी मुसाफिर आखिर इसे क्यों पसंद करेगा?

यह तर्क और भौगोलिक पैमाने पर खरा नहीं उतरता। इसका जवाब अतीत में छिपा है कि इन लाइनों का निर्माण अलग-अलग कंपनियों द्वारा किया गया। द ग्रेट इंडियन पेनिनसुलर रेलवे (जीआईपीआर) का कार्यक्षेत्र मुख्यत: उस इलाके तक केंद्रित था, जो आज महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश और तेलंगाना के बीच सिमटा हुआ है।

इसने मुंबई को नागपुर और मुंबई को जबलपुर से जोड़ा। इस बीच ईस्ट इंडियन रेलवे (ईआईआर) ने इलाहाबाद के रास्ते हावड़ा-दिल्ली लाइन को विकसित किया। जब 1867 में ईआईआर की इलाहाबाद-जबलपुर लाइन बनी और 1870 में जीआईपीआर ने मुंबई-जबलपुर लाइन को बना दिया तभी जाकर 1870 में हावड़ा-इलाहाबाद-मुंबई लाइन शुरू हो पाई।

'अराउंड द वर्ल्ड इन एटी डेज' का प्रकाशन 1873 में हुआ था। क्या आपको याद है कि क्या हुआ था? फिलीज फॉग मुंबई समय से पहले ही पहुंच गया और उसने 'बंबई से कलकत्ता' का टिकट खरीदा। हालांकि लंदन में अखबारों ने चाहे जो कहा हो, उसके उलट परिचालक ने कहा, 'रेलवे का काम पूरा नहीं हुआ है....यात्री जानते हैं कि उन्हें खोलबी से इलाहाबाद तक पहुंचने के लिए खुद परिवहन के साधन की व्यवस्था करनी होगी।' इसी तरह फॉग ने अपने लिए हाथी की व्यवस्था की। मुझे हमेशा हैरानी हुई कि खोलबी कहां स्थित था, संभवत: सतना के आसपास कहीं रहा होगा। 'अराउंड द वर्ल्ड इन एटी डेज' के लेखक जूल्स वर्न पर कुछ शोधार्थी शायद इससे पर्दा उठाएंगे।

निश्चित रूप से हावड़ा-इलाहाबाद-मुंबई लाइन बहुत ज्यादा लंबी थी। हर किसी को यह मालूम था और इसके चलते ही हमें हावड़ा-नागपुर-मुंबई मार्ग बनाना पड़ा। यह करीब 1,968 किलोमीटर दूरी है। नक्शे पर यह एकदम सीधी रेखा नजर आती है, कम से कम नागपुर-मुंबई के बीच ऐसा कहा जा सकता है। आखिरकार किसी तरह 1900 में जाकर यह पूरा हो गया, जिसके लिए बंगाल नागपुर रेलवे (बीएनआर) को कुछ हद तक श्रेय जाता है। हैरानी की बात है कि 1871 में इसके लिए बीएनआर का इंतजार करना पड़ा, जबकि उससे पहले पश्चिम बंगाल, ओडिशा और छत्तीसगढ़ के इलाके रेल नेटवर्क से जुड़ गए थे।

हावड़ा-मुंबई मार्ग को छोटा करना भी बीएनआर की स्थापना के पीछे एक मकसद था। मगर मानचित्र पर एक फिर गौर कीजिए। हावड़ा-नागपुर-मुंबई मार्ग उतना छोटा नहीं है, जितना पहली नजर में लगता है। हावड़ा-मुंबई के बीच छोटा मार्ग जबलपुर से होकर ही निकलना चाहिए। मुंबई-जबलपुर लिंक को लेकर कोई समस्या नहीं। मगर छत्तीसगढ़ और झारखंड के रास्ते जबलपुर-हावड़ा लिंक मौजूद नहीं है। अगर ऐसी कोई लाइन हो तो हावड़ा और मुंबई के बीच दूरी कम हो जाएगी। कुछ लोगों का कहना है कि 400 किलोमीटर दूरी कम हो जाएगी तो कुछ 500 किलोमीटर बताते हैं। मेरे ख्याल से यह लाइन की रूपरेखा पर निर्भर करता है। अजीब बात यह है कि अंग्रेजों ने पहले ही 1925 में बरवाडीह-चिरमिरी लिंक के बारे में सोचा। यह करीब 90 साल पहले की बात है। छत्तीसगढ़ और झारखंड प्राकृतिक संसाधन संपन्न हैं और 90 साल पहले भी रहे होंगे। अंग्रेज कोयला खदानों का दोहन करने के लिए वह रेलमार्ग चाहते थे।

बरवाडीह झारखंड और चिरमिरी छत्तीसगढ़ में है। इन दोनों स्टेशनों की दूरी 182 किलोमीटर है। गौर करने वाली बात है कि बरवाडीह और चिरमिरी रेलवे स्टेशन ब्रॉड गेज लाइनों से जुड़े हैं लेकिन आपस में ब्रॉड गेज लाइन से नहीं जुड़े हैं। हालांकि कुछ सामग्री अप्रामाणिक है और उसका स्वरूप रेलवे किंवदंती का है। चूंकि इतिहास में इसका प्रमुख रेलवे नेटवर्क के माफिक वर्णन नहीं किया गया है, लिहाजा आपको असल में यह पता नहीं चलता कि क्या सच है और क्या झूठ।

रेलवे किंवदंतियों के अनुसार बरवाडीह-चिरमिरी के लिए अंग्रेजों ने ने सर्वेक्षण किया, जमीन अधिग्रहीत की और यहां तक कि 1930 में निर्माण भी शुरू कर दिया। फिर द्वितीय विश्व युद्ध शुरू हो गया और इसके साथ ही निर्माण के काम पर विराम लग गया। उसके बाद लंबे समय तक कुछ नहीं हुआ, हालांकि इस लाइन को वर्ष 1999 में आधिकारिक मंजूरी मिल गई। कम से कम कम एक पूर्व रेल मंत्री ने ऐसा कहा। वर्ष 2007-08 में बरवाडीह-चिरमिरी के मुद्दे ने फिर जोर पकड़ा और उसे बजट भाषण में जगह भी मिली।

हालांकि बजट भाषण में यह नहीं कहा गया कि इस लाइन को बनाया जाएगा बल्कि उसके सर्वेक्षण की बात कही गई। इस लिंक के लिए तमाम सर्वेक्षण और पुन: सर्वेक्षण प्रस्तावित किए गए कि सनी देओल भी उकताकर 'सर्वे पे सर्वे' कहने लगेंगे। बहरहाल ईमानदारी से कहें तो प्रत्येक सर्वेक्षण का अपना महत्त्व होता है। जैसे कि तकनीकी सर्वेक्षण का मकसद अलग होता है और ट्रैफिक सर्वेक्षण का अलग, जिससे उस पर प्रतिफल का अंदाजा मिलता है।

मगर वर्ष 2011-12 में ममता बनर्जी के रेलवे बजट भाषण में कुछ खास था। उन्होंने कहा, 'पिछले दो बजटों में मैंने नई लाइनों, गेज रूपांतरण/दोहरीकरण को लेकर 251 संशोधित सर्वेक्षणों/नए सर्वेक्षणों का ऐलान किया। इनमें से 190 सर्वेक्षण पूरे हो गए हैं या इस वित्त वर्ष के अंत तक पूरे हो जाएंगे। इन लाइनों को भी 12वीं पंचवर्षीय योजना में शामिल किया जाएगा।' जहां 12वीं पंचवर्षीय योजना वर्ष 2017 में समाप्त हो रही है, वहीं विशेष प्रतिबद्धता जताने के बावजूद इस मामले में बहुत प्रगति नहीं हुई। अब यह कुछ अधिक विशिष्ट हो गया है क्योंकि छत्तीसगढ़ सरकार और रेल मंत्रालय के बीच एक विशेष उद्देश्य निकाय (एसपीवी) बनने जा रहा है। मगर यह बरवाडीह-अंबिकापुर के बीच है।

चिरमिरी और अंबिकापुर के बीच तकरीबन 80 किलोमीटर की दूरी है। मुझे संदेह है कि रूपरेखा में कुछ बदलाव हुआ है, जिसके चलते यह बरवाडीह-चिरमिरी के बजाय बरवाडीह-अंबिकापुर लाइन बन गई है। निस्संदेह छत्तीसगढ़ के रायपुर और ओडिशा के झारसुगुडा में भी अन्य लाइन बनाई जाएगी, जिससे मुंबई-हावड़ा के बीच की दूरी और कम हो जाएगी।

सभी जानते हैं कि 19वीं शताब्दी में रेल लाइनों का विकास उन इलाकों में नहीं हुआ, जहां आंतरिक आर्थिक विकास की और ज्यादा संभावनाएं थीं बल्कि उन इलाकों में ज्यादा हुआ, जहां निर्यात के लिए उनके दोहन की गुंजाइश थी। वर्ष 1947 के बाद हमने कुछ ही नई लाइनें जोड़ी हैं। जमीन से जुड़े मसलों को छोड़ दिया जाए तो मेरे ख्याल से बरवाडीह-अंबिकापुर लाइन वर्ष 2018 में पूरी हो जाएगी।

बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 8 अंक 242

7-12-15

कार और प्रदूषण

भारत की राजधानी दिल्ली को दुनिया के सबसे प्रदूषित शहर का खिताब मिला है। वैश्विक मानदंडों को छोड़िए एक समय प्रदूषण के लिए कुख्यात पेइचिंग शहर को भी दिल्ली ने इस मामले में मात दे दी है। इन प्रदूषित कणों की मार नागरिकों के फेफड़ों पर पड़ना लाजिमी है। सेंटर फॉर साइंस ऐंड एनवायरनमेंट के अनुसार भारतीयों की मौत में वायु प्रदूषण पहले ही पांचवें सबसे खतरनाक पहलू के रूप में दर्ज हो चुका है। स्पष्ट है कि दिल्ली में स्वास्थ्य आपातकाल की स्थिति बन गई और यह सुखद है कि सरकार ने उस पर नियंत्रण की दिशा में कदम उठाने का फैसला किया है।

इस समस्या से निपटने के लिए सरकार ने पिछले हफ्ते तमाम निर्णय लिए। इनमें बदरपुर और राजघाट स्थित तापीय बिजली संयंत्र बंद किए जा रहे हैं और राष्ट्रीय हरित पंचाट के समक्ष पश्चिमी उत्तर प्रदेश में स्थित दादरी संयंत्र को भी बंद किए जाने की याचिका दाखिल की जाएगी। वर्ष 2017 से यूरो-6 उत्सर्जन मानकों वाली कारें ही चलाई जाएंगी। सड़कों पर धूल की सफाई वैक्यूम क्लीनर से की जाएगी। निर्माण गतिविधियों और मौसमी परिस्थितियों के साथ ही पेड़ों की कटाई से भी हवा में धूल की मात्रा बढ़ती है।

मगर सबसे ज्यादा ध्यान सरकार के तात्कालिक कदमों पर गया है, जिसके तहत सड़क पर कारों के लिए अस्थायी व्यवस्था का प्रावधान है, जिसमें सप्ताह के दौरान सम-विषम क्रमांक वाली गाड़ियां चलाने की इजाजत होगी। हालांकि अभी तक यह स्पष्ट नहीं है कि ये प्रतिबंध कब तक लागू होंगे और उसकी बारीकियों पर अभी काम किया जाना बाकी है। क्या यह दिल्ली में सभी कारों पर लागू होगा, यहां तक कि उन पर भी जो राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के अन्य इलाकों से भी आती हैं? क्या राज्य और केंद्र सरकार की कारों को रियायत मिलेगी? टैक्सियों के बेड़े के लिए क्या व्यवस्था होगी? फिर भी सोशल मीडिया पर इसको लेकर व्यक्त की जा रही चिंता और विरोध समझ में आता है। चूंकि इसके लिए बहुत कम समयावधि दी जा रही है, ऐसे में जिनके पास एक ही कार है, उन्हें इससे ताल बिठाने में संघर्ष करना पड़ेगा। शहर में मौजूदा सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था की सीमाएं और कानून प्रवर्तित एजेंसियों की सक्षमता को लेकर ये सवाल वाजिब ही हैं कि क्या यह कदम भी आम आदमी के उत्पीड़न का एक और जरिया बन जाएगा। इस सम-विषम व्यवस्था को अन्यत्र भी आजमाया गया है। नतीजे यही दर्शाते हैं कि जहां भी इसे आजमाया गया वहां कुछ वक्त के लिए प्रदूषण के स्तर में 18 से 20 फीसदी कमी दर्ज की गई लेकिन जब यह स्थायी हो गया तो उसका तोड़ निकाला गया और यह प्रतिबंध निष्प्रभावी हो गया। स्पष्ट रूप से इसे केवल फौरी आपातकाल उपाय के तौर पर अपनाया जा सकता है और खासतौर से सर्दियों के दौरान जब दिल्ली की हवा में धरती प्रदूषित हवा के प्रसार में सक्षम नहीं होती तो यह स्पष्ट खतरा बन जाता है।

हालांकि ऐसा कोई भी कदम अशांतिकारक होगा। दिल्ली सरकार कई महीनों से सत्ता में है और वह इसे तार्किक तरीके से लागू करने के लिए लोगों को तैयार कर सकती थी। इसे लागू कैसे करेंगे, उससे जुड़े वाजिब सवाल भी हैं। अन्यत्र जहां भी इसे अपनाया गया, वहां इसके कार्यान्वयन का जिम्मा बुनियादी रूप से पुलिस का रहा। पुलिस दिल्ली सरकार के नियंत्रण में नहीं आती, बल्कि उसके साथ उसका रिश्ता तल्ख रहा है। पिछली सरकार के दौरान बस रैपिड ट्रांजिट कॉरिडोर जैसी पहल पुलिस के सहयोग के बिना नाकाम हो गई। सबसे खराब परिदृश्य यही होगा कि इस कदम को आनन फानन में बिना तैयारी के लागू किया जाएगा और हंगामे के बाद पलट दिया जाएगा, जिससे दिल्ली की आबोहवा में कोई सुधार नहीं होगा। दिल्ली को उसकी हवा की गुणवत्ता सुधारने की दरकार है, जिसमें सार्वजनिक परिवहन अवसंरचना में सुधार के साथ बेहतर नजरिया अपनाना होगा।